विशुद्ध राष्ट्रवाद को समर्पित प्रमुखतः विचार पाक्षिक

शुल्क आदि सहयोग देकर, 'हिन्दु अस्मिता को अधिक सशक्त एवं प्रभावी बनाने में अपना योगदान दीजिए। धन नकद/मनीऑडर/बैंक-ड्राफ्ट द्वारा निम्न पते ही भेजिए:-

विक्रम गणेश ओक

16,एम. आय. जी. (शॉप कम रेसीडेन्स) नन्दानगर, मेनरोड़ इन्दौर (म. प्र.), 452008

पत्र पंजीयन क्रमांक 012229/13/3/91 डाक पंजीयन क. IDC/MP/490/91

वर्ष 1 अंक 3 ज्येष्ठ कृष्ण 4, संवत/2048/शके 1913 1991/दि. 1 जुलाई 91 सम्पादक-विक्रम गणेश ओक (विक्रमसिंह) पृ 4, मूल्य 1.50 पैसे वार्षिक रू. 40/-

जन्मभूमि आंदोलन के सेनापति की 'बातचीत'

से बातचीत !

राम जन्मभूमि आन्दोलन जब युद्धस्तर पर चलाया जा रहा है तो प्रत्यक्ष रणक्षेत्र में उसका नेतृत्व करनेवाले विश्व हिन्दु-परिषद के महामन्त्री श्री अशोक सिंहल को इस आन्दोलन के सेनापति रणसंगर में जूझ रहा हो तो उसके लिए प्रत्यक्ष 'बात-सेनापति के रूप में सम्बोधित करना सार्थ ही है। जब चीत' का समय निकाल पाना सम्भव ही न होगा। ऐसे में उस संग्राम में अपनत्वपूर्ण रूचि रखनेवालों के लिए यही उचित होता है कि जो, जैसी जिस रूप में स्थिति का ज्ञान हो तदनुसार अपनी क्षमतानुसार अपनी रीति से उसमें सहयोग करे। ठीक इसी नीति से हम 'सेनापतिजी' की साप्ताहिक पांचजन्य 9 जून 1991 में प्रकाशित 'बातचीत' से 'बातचीत' कर सहयोग का सद्प्रयास कर रहे है।

वैसे अशोकजी के विचारों से सहमति-असहमती भिन्न-विषय है, पर इतना अवश्य कहना होगा कि सामान्यतः उनका कथन लगभग संयत-सन्तुलित रहता है। तथापि, इस सन्दर्भित 'बातचीत' में स्थिति कुछ भिन्न प्रतीत होती है। हो सकता है चालू चुनावी युद्ध की मुक्तता से लाभ उठाने के मन्तव्य से अशोकजी ने ऊंचे तेवर वाले विचार रखे हो या यह भी सम्भव है कि जब साध्वी ऋतुम्भरा 'प्रखर प्रज्वल वाकशैली' के रुप में अनन्य वक्ता स्वरुप हिन्दुओं के मानस पर छा गयी है तब उससे प्रेरित हो अशोकजी ने कुछ भडकीली, तीक्ष्ण, अह्वानात्मक शैली का अव-लम्बन किया हो। जो भी हो, उसे 'बातचीत' की सार्थकता के विश्लेषण हेतु प्रस्तुत है यह 'बातचीत' !

युद्ध के आरम्भ में ही संधि-प्रस्ताव की उतावली करते हुए विश्व हिन्दू परिषद के अन्य नेताओं की भांति अशोकजी भी यह दोहरते रहते हैं कि, मुसलमानों ने तीस हजार मन्दिर नष्ट किये हैं। पर हम न तो तीस हजार मन्दिरो की मांग कर रहे हैं। हम तो मात्र तीन मन्दिर अयोध्या (रामजन्म भूमि) मथुरा (कृष्ण जन्मभूमि) और काशी (विश्वनाथ मन्दिर) की ही मांग कर रहे है। हां जन्मभूमि आन्दोलन का सेनापति यह याचना कर रहा है !

अशोक जी से यह पूछने पर कि, क्या वह स्पेन या इस्रा-यल के रास्ते पर चलेंगे ? लोकतन्त्र की ढाल को सामने तानते हुऐ सिंहलजी कह देते है कि उन्हें नहीं मालूम कि स्पेन या इस्रा-यल ने ऐसे प्रकरणों में क्या कुछ किया !

अशोकजी समान अपने जीवन में तिरसठ ग्रीष्म देखनेवाले महान नेता को, 29 नवम्बर 1947 को संयुक्त राष्ट्रसंघ की महा सभा द्वारा फिलिस्तीन विभाजन प्रस्ताव को दो तिहाई से अधिक बहुमत से पारित करने से प्रगट हुए इस्रायल के आचरण का स्म-रण दिलाना हमारे लिए कदापि शोभनीय नहीं। तथापि पन्द्रहवी शती में स्पेन के विजयी ईसाईयों ने पराजित इस्लामियों के लिए जो विकल्प रखे उनको प्रस्तुत करने में हमें कोई संकोच नहीं। इतिहास कहता है कि, तब स्वतन्त्र स्पेन के शासक की ओर से एक अवधि निश्चित कर दी गयी कि उस अवधि में स्पेन के सारे मुसलमान या तो स्वयंस्फूर्ति से ईसाई धर्म स्वीकार कर लें या सपरिवार सदा के लिए स्पेन छोड़ कर चले जाय और इन दोनों विकल्पों के उपरान्त जो भी इस्लामी (स्त्री या पुरुष) स्पेन में रहेगा उसका सिर धड़ से अलग कर दिया जायेगा। हां, क्रूर-कठोर लगता है ना यह निर्णय ! पर आठवी शती के आरम्भ में ईसाई-स्पेन को रौंदने वाली इस्लामी सेना ने जो क्रूरतम, भीषण, पाशविक अत्याचार किये थे उसका यह दण्ड सापेक्षया सौम्य ही था।

अशोकजी, यह तो ठीक ही है कि, आप विश्व हिन्दू परिषद को संसार भर के हिन्दुओं का धार्मिक सामाजिक सुधार और उन्नयन करनेवाला संगठन मानते है। पर विदेशस्थ हिन्दुओं की समस्याओं और कई देशों में हिन्दुओं द्वारा संचालित सरकारों के गिराये जाने की बात पर आप परिषद के राजनीतिक संगठन नहीं होने का निमित बना कर जो कन्नी काटते है उसे कदापि उचित माना नहीं जा सकता। आज के युग में ही नहीं तो सदा से धर्म-संस्कृति, सामाजिक रीति आदि राजनीति को प्रभावित करते रहे हैं और राजनीति से प्रभावित होते रहें हैं।

धर्म-मजहब के आधार पर ही भारत का राजनीतिक विखण्डन किया गया और मजहब के दीवानो ने लाखों हिन्दु परि-वरको उजाड़ दिया और धर्म रक्षा हित वे अपनी धर्मभूमि भारत की ओर दौड़ पड़े। मजहबी फमानों के अनुसार ही पाकिस्तान बंगला देश में हिन्दुओं का उत्पीड़न धर्मपरिवर्तन होता रहा और भारत में नये पाकिस्तान के अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति हेतु दंगे होते रहे है।

श्रीराम जन्मभूमि मुक्ति के आन्दोलन को आप कितना ही धर्म से असम्बन्ध बताते रहे पर इस्लामी उसे स्वीकारने को तैयार नहीं है, न होगा ! इसलिए तो 26-27 अगस्त 1989 को इंग्लैंड के मिल्टन केनेस में विश्व हिन्दु परिषद के तत्वाधान में आयोजित विराट विश्व हिन्दु सम्मेलन में जब राम मन्दिर निर्माण का प्रस्ताव आया तो वह एक स्वर से पारित नहीं हो सका। पाकिस्तान नेशनल असेंबली के सदस्य श्री भगवानदास चावला के नेतृत्व में सम्मेलन में उपस्थित पन्द्रह सदस्यीय हिन्दु प्रतिनिधि मण्डल ने अपने इस तर्क के साथ कि यदि इस प्रकार का प्रस्ताव सम्मेलन में पारित होता है तो उसको प्रतिक्रिया में पाकिस्तान में बचे खुचे मन्दिर भी नष्ट कर दिये जायेंगे, प्रस्ताव का विरोध किया। और इस प्रकार पाकिस्तान से आये हुए हिन्दु प्रतिनिधिमण्डल के लिखित विरोध के साथ श्रीराम (जन्मभूमि मन्दिर के निर्माण का प्रस्ताव उस विराट विश्व हिन्दु सम्मेलन में स्वीकार हो सका।

(शेष अगले अंक में)

हिन्दु अस्मिता

कतिपय हितैषी शुभचिन्तकों द्वारा पत्रिका के शीर्षक में, 'हिन्दु' शब्द में 'द' में 'उ' की ह्रस्व (छोटी) मात्रा होने के सम्बन्ध में आशंका व्यक्त की गयी है। इसके समाधान स्वरुप हम यह स्पष्ट करना आवश्यक समझते है कि संस्कृत के कोषों एवं अन्य सम्बन्धित साहित्य में 'द' में 'उ' की मात्रा ह्रस्व (छोटी) होती है तथा फारसी में दीर्घ (बड़ी) होती है।

सम्पादक

आसिंधुसिंधुपर्यन्ता यस्य भारतभूमिका।
पितृभूः पुण्यभूश्चैव स वै हिंदुरिति स्मृतः।।

—वीर सावरकर

राष्ट्रीय आत्मा की पीड़ा

"परम्परानुसार मैं साल में दो बार गणतन्त्र दिवस और स्वतन्त्रता दिवस की पूर्व संध्या पर देशवासियों को सम्बोधित करता हूं। लेकिन आज अन्तर्मन की भावनाएं व्यक्त करने के लिए देशवासियों को सम्बोधित कर रहा हूं।" महामहिम राष्ट्रपति श्री रामास्वामी व्यंकटरामन द्वारा शनिवार 8 जून की रात में राष्ट्र के नाम अचानक प्रसारित अपने विशेष सन्देश के आरंभिक वाक्य के कथानुसार व्यक्त विचार उनकी अन्तर्मन की भावनाएं थीं। और देश के प्रथम नागरिक के अन्तर्मन की भावनाएं राष्ट्रीय आत्मा की भावनायें होती हैं।

साम्प्रति देश दसवीं लोकसभा का चुनाव करने जा रहा है। इस प्रकार अप्रत्यक्ष जनतंत्र में प्रतिनिधियों का चुनाव हमारे लिए कोई नया अनुभव नहीं है। यदि नया कुछ है तो वह है जनतन्त्र में होने वाले तन्त्र का कतिपय जनों द्वारा दुरुपयोग। धनबल और बाहुबल के माध्यम से मतदान केंद्रों पर अपराधिक अधिकार करना, जाली मतदान करना, जैसा कि कहा जाता है 'वोट छापना' और लोगों को डरा-धमका कर जनता में एक दहशत का वातावरण निर्माण करना। यह सब तीव्रता से बढ़ते हुए उस अवस्था को पहुंचने जा रहा था कि यह निर्वाचन और हमारा जनतन्त्र भविष्य में एक हास्यास्पद वस्तु भर बन कर रहने की चिंता उत्पन्न हो गयी है। और ऐसा ही यदि चलता रहा तो आश्चर्य नहीं कि देश में अराजकता सैनिकी शासन या अधिनायकवादी शासन सत्तासीन हो जाय।

जनतन्त्र में परिलक्षित अनेक दोषों या कि यूं कहिये कि उसमें निहित मुक्ताओं से अनुचित लाभ उठा कर कतिपय तत्वों द्वारा उसे विकृत किये जाने के उपरान्त भी हम यह कहना चाहेंगे कि अराजकता सैनिकी-शासन अधिनायकवादी शासन की तुलना में वह सहानीय है। विदेशी सत्ता तो रौरव नर्क से भी अधिक अस्वीकार्य है। इसलिए समय रहते ही जनतन्त्र को विकृत होने से रोकने की चेष्टा करना देश के नागरिकों का धर्म है और देश के प्रथम नागरिक ने इसी धर्म का निर्वहन करने के मन्तव्य से अपने उदबोधन द्वारा स्वार्थी तत्वों की आलोना के साथ ही चेतावनी भी दी और सभी को अपने परम राष्ट्रीय दायित्व का ध्यान और भान भी दिलाया।

'स्वतन्त्रता' जनतन्त्र का मानों प्रथम मन्त्र है। और आचरण-विचरण, बोलने-चालने की स्वतन्त्रता के नहीं होने और होनेके अन्तर को यदि समझना हो तो 5 वर्ष पूर्व के सोवियत रुस और पेरेस्त्रोइका के अपनाने के उपरान्त के वर्तमान के रूस अन्तर को देखना उचित होगा। कल का रुस वह था जहां नोबेल पुरस्कार के आतंकरण का विश्वश्रेष्ट सम्मान पाने वाले अलेक्सांद्र सोल्झेनित्सन साइबेरिया में सढते रहे पर इसके ठीक विपरीत आज उसका सामान्य नागरिक सड़क पर मुखर ही नहीं हो रहा है तो जैसा हम हमारे देश में अनुभव करते हैं ठीक वैसे ही रुस में आसन्न कार्यकारी राष्ट्रपति चुनाव के प्रसार अभियान में विपक्षियों के पोस्टर फाड़ रहा है।

सामान्य मनुष्य के स्वभाव का यह एक लक्षणीय तत्व होता है कि जब वह नियन्त्रित होता है तो सर्कस के शेर की भांति ही अपने अधिकार की शक्ति को विस्मृत कर कोड़े की आवाज पर आज्ञाकारी बनता रहता है और जब उसे स्वतन्त्रता मिलती है तो वह विवेक को तांक में रख विकराल जबड़े से दहाडता हुआ चाहे जहां पंजे मारता है। पंजा मारने की इसी स्वतंत्रता को नहीं तो स्वच्छदता को नियंत्रित करने की जनतन्त्र में बहुत आवश्यकता होती है और यह काम बहुत कुछ दुष्कार सा होता है राष्ट्रपति ने अपने उद्बोधन में कहाहै कि 'हम सब चोरी से घृणा करते हैं और समाज चोर निन्दनीय समझता है।'

चोरी करने वाले अपने वचनों से भले ही राष्ट्रपति के कथन से सहमति दर्शायें पर उनका मानस उन्हें उसी प्रकार चौर्य-कर्म हेतु प्रेरित करता है। कारण स्वाथ चुनाव में सफलता प्राप्त करनी है, सत्ता पर अधिकार करना है। और जब सामने वाला पक्ष अनुचित रीति से सत्ता के समीप पहुंच रहा हो तो हम यदि 'सत्यं शिवं सुन्दरमं' को प्रतिबद्ध हो तो 'सत्ता धनं सम्मानम' तो हमें कभी प्राप्त हो हीं नहीं सकता। किसी निराशा से किसी महत्वाकांक्षा से किसी जिद से या एक बार सत्ता पा ले फिर हम सारे नैतिक नियमों का पालन करेंगे-जनसेवा ही करेंगे इस पुनीत भावना से भी क्यों न हो ऐसे लोग और दल उन सभी अनुचित रीति नीतियों को अपनाने में संकोच नहीं करते जो भ्रष्ट कहलाती है। भारतीय जनता पार्टी के राष्ट्रीय महामंत्री श्री कुशाभाऊ ठाकरे ने 1983 में अपनी भावनाएं इन शब्दों में व्यक्त की थी—'कांग्रेस के चुनावी प्रपंचतंत्र से निपटने का एक यही तरीका बचा है कि कम से कम एक बार उसे उसी के अखाड़े में उसी के हथियारों से उसी के रेफरी के सामने पछाड़ा जाएं।' (दैनिक नई दुनिया, इन्दौर **28** जुलाई 1983) ठाकरेजी के इन विचारों में मानों प्रतिशोध झलकता है या यूं कहिये कि कोई महत्वकांक्षा पर जब हम 1953 के एक प्रसंग का सन्दर्भ इस कथन से जोड़ते है तो लगता है कि सत्ता पाना भाजपा की महत्वाकांक्षा रही है। पत्रकार श्री हीरालाल शर्मा 1952 में जनसंघ के विधायक थे। जीवन के आठवे दशक में प्रवेश के उपलक्ष्य में 30 नवम्बर 1989 को इन्दौर में उनका प्रकट अभिनन्दन किया गया।

उस अवसर पर अपने भावपूर्ण उद्बोधन में श्री शर्मा ने एक संस्मरण सुनाते हुए कहा कि 1952 के चुनाव हो चुके थे, झाबुआ के क्षेत्र में भयंकर सूखा पड़ा। उन्होंने सूखा ग्रस्त क्षेत्र का प्रत्यक्ष प्रवास कर देखा कि आदिवासीजन पत्ते खाकर जी रहें हैं। किसी का नाम न लेते हुए उन्होंने कहा कि तब क्षेत्र के बड़े जनसंघी नेता से सुखा पीडित-क्षेत्र में सेवा आरम्भ करने की बात जब उन्होंने चलायी तो बड़े नेता ने कह दिया क्या आवश्यकता है चुनाव तो अब बहुत दूर है। हम पर आरोप लगता रहा है कि हम भाजपा के विरोध में लिखते हैं। पर हम पुनः स्पष्ट करना चाहते है कि कांग्रेस और कांग्रेसी संस्कृती वाले बनने-मिटने वाले दलों से तो कोई आशा नहीं पर संस्कृति के साथ आज धर्म की दुहाई देने का साहस दिखा रहे हैं वे भी यदि भ्रष्ट मार्ग के पथिक हो जाये तो निराशा और निराशा के अतिरिक्त क्या हो सकता है? मन्दिर पवित्र स्थान माना जाता है, मूर्ति पूजनीय पर यदि अनुचित मार्ग से प्राप्त धनबल पर उनका निर्माण और प्रतिष्ठान हो तो क्या ऐसे में देवता वास करेंगे? हमारी दृष्टि में राजनीति में सत्ता प्राप्ति निश्चय ही महत्वपूर्ण होती है पर अनीति के मार्ग से वह प्राप्त होती है तो उसके स्थायित्व के प्रति हमें किंचितमात्र भी विश्वास नहीं। और यदि इने-गिने दिनों के लिए सत्ता होती हो तो इतिहास में नाम अवश्य अंकित होगा पर जिस पद्धति से सत्ताप्राप्ति होगी वह भी इतिहास में अवश्य ही अंकित होगा फिर अन्तिम हानि तो राष्ट्र की ही होगी!

जय हिन्दू राष्ट्र

उपकारोऽपि नीचानामपकारो हि जायते। पयः पान भुजंगानां केवलं विषवर्धनम्॥

दुष्ट प्रकृति के मनुष्य पर कितना भी उपकार क्यों न [...]या जाय बदले में वह अपकार ही करेगा। सांप को दूध पिलाना [...]ति उसके विष को बढाना ही है। व्यक्ति हो या समाज जिसे [...]ता और द्वेष घुट्टी में पिलाया गया हो उसके साथ भलाई का [...]हार करता है इसलिए व्यक्ति ही नहीं तो समाज और राष्ट्र [...]ार करने पर भी वह दुष्टता और शत्रुता का ही [...]ी ऐसे शत्रु भाव रखने वाले दुष्ट तत्वों के प्रति भलाई का [...]ार नही करना चाहिए। इस अनुभव सिद्ध सुभाषित की जो [...]नदेखी करता है उसे उसके परिणामों को भुगतना पड़ता है। [...]ावरकर भारतीय इतिहास के पांचवे स्वर्णिक पृष्ठ में, एक [...]का वर्णन करते हुए लिखते हैं–"मुहम्मद गजनी द्वारा प्रथम [...]ोमनाथ मन्दिर ध्वस्त किये जाने के पश्चात हिन्दुओं ने [...]श पुनः जीतकर सोमनाथ मन्दिर का पुनरुद्धार किया। [...]ाद मुसलमानों ने आक्रमण करके इस मन्दिर को पुनः [...]र दिया। इन्हीं संघर्षों के बीच उस प्रदेश में एक हिन्दू [...] राज सत्ता स्थापित हुई। अपने मुसलमानी स्वभाव या [...] कपट अथवा इससे भी आगे धार्मिक दम्भ के कारण [...]ी मुसलमानों के मन में आया कि काफिरों द्वारा पुन[...]ोमनाथ मन्दिर को चुनौती देती हुई उसके सामने एक [...]ी बनाई जाय।

[...]रन्तु तत्कालीन परिस्थितियों में इसे उद्दण्टतापूर्वक कर[...]व न हो सका। फिर क्या अपनी कट्टर कपट नीति [...]ी दीन भाव के साथ मुसलमानों ने हिन्दू राजदरबार[...]ाने के लिए अपना प्रार्थना-पत्र भेजा। यह सुनकर [...]ाश्चर्य नहीं होना चाहिए कि उस भोले हिन्दू राजा द्वारा उस प्रार्थना पत्र को सहर्ष स्वीकार कर लेने के लिए परिणामस्वरुप सोमनाथ मन्दिर के सामने हिन्दू धर्म को चुनौती हुई एक मस्जिद खड़ी हो गई। चाहिए तो यह था कि उक्त क्षेत्र को अपने अधिकार में लाते ही मुहम्मद गजनी द्वारा किये गये सोमनाथ के विध्वंस का स्मरण कर वहा जितनी मस्जिदे थी उन्हें भूमिगत करके फिर सोमनाथ मन्दिर का पुनः निर्माण किया जाता लेकिन उस हिन्दू राजा ने ऐसा नहीं किया। मुसलमानों को मस्जिद गिराना तो दूर रहा हिन्दू राजाओं ने एक और नवीन मस्जिद बनाने की अनुमति दे दी। इतना ही नहीं तो उसके वार्षिक व्यय की भी व्यवस्था की गई। हिन्दूओं को अपनी इस परधर्म सहिष्णुता (सदगुण विकृति) का दुष्परिणाम भी तत्काल ही भोगना पडा। कुछ काल बाद ही अल्लाउद्दीन आदि मुसलमान आक्रमणकारियों ने हिन्दूओं की इस परधर्म सहिष्णुता और उन व्यापारियों को मस्जिद बनाने की आज्ञा देने का बदला गुजरात पर आक्रमण करके- सहस्त्रो हिन्दुओ का कत्लेआम, हजारों हिन्दू ललनाओं के साथ बलत्कार और हिन्दू मन्दिरों के विध्वंस के रुप में चुकाया। अपने इस बदले में उन्होंने पुनर्निमित सोमनाथ मन्दिर को भी सुरक्षित नहीं रहने दिया। अल्लाउद्दीन आदि मुसलमानों की उन बर्बर सेनाओं ने सोमनाथ मन्दिर को छिन्न-बिछिन्न कर डाला .... सोमनाथ का तो नाम शेष हों गया लेकिन उस मस्जिद का महत्व पहिले से अधिक बढ़ गया।"

कहा जाता है कि इतिहास अपने आपको दोहराता है। पर वास्तविकता यह होती है कि, जो समाज या राष्ट्र इतिहास से सीख नहीं लेते वे ही अपने कर्मों से इतिहास को दोहराते हैं। अब यही देखिये इसी माह की पहली तिथि को भाजपा नेता श्री लालकृष्ण आडवानी ने कर्नाटक के डुडापुरा नगर में कहा कि 'उनकी पार्टी अयोध्या में तो राम मन्दिर बनायेगी ही, मुसलमानों की भावना की कद्र करते हुए किसी दूसरे उपयुक्त स्थान पर मस्जिद भी बनाएगी।' और इसी 1 जून को महाराष्ट्र में मिनी-पाकिस्तान नाम से कुख्यात नगर भिवण्डी में भाजपा के अन्य महान नेता श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने भी ठीक यही राग आलापा। देखा आपने कि, भाजपा के इन नेताओं को मन्दिर ही नहीं तो उस आक्रांता बाबर द्वारा श्री राम मन्दिर भ्रष्ट कर निमित तथाकथित मस्जिद के पुनर्निर्माण की कितनी चिन्ता है। और ये सरकार बनाने के सपने पाल रहे है और जनता से एक मौका मांग रहे हैं। इनकी सरकार बने या न बने पर ये मस्जिद जरुर बनायेंगे। बाबर ने अयोध्या से तीन किलोमीटर दूरी पर सहनवां गाँव में मीर बाकी को जो चालीस एकड़ भूमि दी थी, उसी पर बिशाल मस्जिद बनाने की योजनाए इनके मन मस्तिष्क में छायी है। पूर्व प्रधानमंत्री श्री वी. पी. सिंह ने जब मुख्यमंत्रीयों की बैठक बुलाई तो मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री श्री सुन्दरलाल पटवा ने वहां घोषणा कर दी कि भाजपा शासित तीन राज्यों तथा मध्यप्रदेश, राजस्थान और हिमालचल प्रदेश 5 करोड़ रूपया बाबरी मस्जिद निर्माण का दायित्व उठाने की घोषणा करते रहे हैं। फिर देश में धर्मनिरपेक्षवादी दलों की कमी नहीं और सत्ता पर आसन जमाये होने से देश की तिजोरी की चाबियाँ भी उन्हीं के हाथ। वे भला क्यों चूकने लगे मुसलमानों को खुश रखने का ऐसा अवसर मतलब इतिहास काल के उस हिन्दू राजा के पदचिन्हों पर चलते हुए ये आधूनिक राजन्य एक दो अरबों का विराट मस्जिद काम्पलेक्स अयोध्या में उस पावन नगरी की छाती पर बनायेंगे। और यह कहते हुए फूले नहीं समायेंगे कि हमने हमारे दल ने विश्व में धार्मिक उदारता का, धर्मनिरपेक्षता का एक बजोड आदर्श स्थापित किया है। और सदगुण विकृति का वह स्मारक देखकर भावी पीढ़ियाँ अपने पूर्वजो को कोसेंगी।

(4 पेज का शेष)

(अल्पसंख्यक तुष्टीकरण का यथार्थ और उद्देश्य !) शीर्षक से प्रकाशित भाजपा की पुस्तिका में मुस्लिम-तुष्टीकरण की आलोचना करते हुए इस तुष्टीकरण-नीति के आरंभ को इस प्रकार व्यक्त किय गया है —"1911 में यूरप की राजनीति में मोड़ आया। तुर्किस्तान का बादशाह विश्व केमुस्लिम समुदाय का धर्मगुरु अर्थात खलिफा था। खलिफा अंग्रेजों के विरुध्द जर्मनी के साथ हो लिया। इसलिए अंग्रेजों द्वारा उसके (खलिफा) विरुध्द कार्रवाई की गई। इसके फलस्वरुप हिन्दुस्तान के मुसलमान अंग्रेजों के विरोध में लिखने-बोलने लगे। तत्कालीन स्वाधीनता संघर्ष के प्रमुख सेनानी लोकमान्य तिलक ने सोचा कि मुसलमानों के इस अंग्रेज-विरोध का उपयोग स्वाधीनता संघर्ष हेतु भलीभांति किया जा सकता है। और इसी मन्तव्य से उन्होंने (तिलकजी ने) मुस्लिम लीग के साथ लखनौ समझोता किया और मुसलमानों को बेहिसाब सहूलियतें दी (1916)। अबतक तो अंग्रेज मुसलमानों का तुष्टीकरण करते थे पर अब तो कांग्रेस ने मुस्लिम तुष्टीकरण चालू कर दिया —"। वस्तुतः भाजपा ने अपनी प्रचार-पुस्तिका में यह जो कुछ लिखा है, वह सर्वथा सत्य है। और लखनऊ का यह प्रसंग इसी शती के आरंभ का अर्थात एक प्रकार से अभी-अभी का प्रसंग है। और खुशवन्तसिंह के वीर शिवाजी-अफजलखान प्रकरण से इस को एक प्रमुख भिन्नता यह है कि खुशवन्तसिंह ने जो कुछ कहा उसके समर्थन में प्रस्तुत करने योग्य 300 वर्ष पूर्व का कोई प्रबल-प्रमाण खुशवन्तसिंह के झोले में नहीं था और भाजपा ने 1916 का लखनऊ समझौता और लोकमान्य तिलक के सम्बन्ध में इस प्रचारपुस्तिका में जो कुछ लिखा उसके लिए पर्याप्त ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध हैं। इन्हीं प्रमाणों का आधार लेकर संघ-परिवार के दो विद्वानों ने अपने-अपने ग्रन्थों में जो कुछ लिखा है वह इस पुस्तिका के लेखन से अधिक आक्रामक स्वरुप का है।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरकार्यवाह श्री हो. वे. शेषाद्री ने और देश बट गया' ग्रन्थ में, 'कांग्रेस तुष्टीकरण के फेर में, शीर्षक सातवे अध्याय में, 'लखनऊ समझौता: अलगाववाद पर मुहर' उपशिर्षक में लिखा है।

कि,-"उसन (कांग्रेस ने) निश्चय किया कि मोर्ले-मिण्टो सुधारों के बदले में आपस में निश्चित सूत्र के आधार पर मुस्लिम लीग से सीधे एक समझौता कर लिया जाय। इस प्रकार कांग्रेस और लीग दोनों ने एक साथ 1996 में लखनऊ में अपने वार्षिक अधिवेशन किये। यहीं लखनऊ समझौता-जन्मा और उसे तिलक, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, ऐनी बेसेंण्ट आदि जैसे सभी कांग्रेसी महारथियों का आशीर्वाद प्राप्त हुआ। तिलक के तो हर्ष का पारावार न रहा। उन्होने कहा कि लखनऊ ने अपने नाम को सार्थक कर दिया गदगद् होकर उन्होंने कहा, "लखनऊ (लकनाऊ) में हमारा भाग्य खुल गया।" इसके आगे लखनऊ समझौते के प्रावधानों को अक्षरबद्ध करने के उपरान्त शेषाद्रिजी आगे लिखते है- "कांग्रेस ने लखनऊ समझौते के माध्यम से दो बड़े विषैले सिद्धांतों को अपनी स्वीकृति दे दी थी: एक था पृथक साम्प्रदायिक निर्वाचन मंडलों का मुसलमानों को अधिकार और साम्प्रदायिक प्रतिनिधान-दूसरा था भारत के समूचे मुस्लिम समुदाय के लिए बोलने का मुस्लिम लीग का अधिकार।

कांग्रेस के शीर्षस्थ नेताओं में केवल पंडित मालवीय ने ही लखनऊ समझौते का विरोध और निरनुमोदन किया।" इसके अनन्तर लेखक शेषाद्रिजी ने अन्य लेखकों के उदाहरण प्रस्तुत कर यह बताने की चेष्टा की है कि लो. तिलक लखनाऊ समझौते के लिए किस प्रकार तुले हुए थे एतदर्थ उसके सम्पन्न होने पर किस प्रकार अतिआग्रही रहे।

श्री ब. ना. जोग उपारव्य बालासाहब महाराष्ट्र के संघ परिवार में अपना एक बिशिष्ट स्थान रखते है। श्री जोग संघ-परिवार, के बंबई से मराठी में प्रकाशित साप्ताहिक विवेक के पूर्व सम्पादक तथा विचारशील साहित्य के लेखक के रूप में जाने जाते है। विगत वर्ष ही आपका एक ग्रन्थ 'हिन्दु मुसलमान ऐक्य भ्रम आणं सत्य' (हिन्दु-मुस्लिम एकता भ्रम और सत्य) शीर्षक से मराठी में प्रकाशित हुआ है। साढ़े-छह-सौ पृष्ठों के इस इतिहास ग्रन्थ में श्री जोग ने मुस्लिम मानसिकता को उघाडकर रखने का एक असाधारण प्रयास किया है। लिखनौ करार' शीर्षक से 9 वे अध्याय में लेखक ने लिखा है कि अंग्रेजों द्वारा शत्रुपक्ष के साथ खडे तुर्की के खलिफा के विरुद्ध कठोर नीति अपनाये जाने से भारत के मुसलमान लाचार बने और उस लाचारी का उपयोग राष्ट्रीयता की मजबूती के लिए नहीं करते हुए, कांग्रेस के नेताओं ने स्वयं को ही मुसलमानों के जाल में फंसा दिया।

लेखक आगे लिखते हैं कि "(कांग्रेस की) इसी भूमिका से 1916 के अन्त में लखनऊ-समझौते का उद्भव हुआ। इस समझौते के अनुसार मुसलमानों को, मोर्ले-मिण्टो सुधार कानून से बढ़कर अधिकार दिये गये। इस लखनऊ-समझौते के रचना कार थे लोकमान्य तिलक।

लोकमान्य तिलक की दृष्टि में इस समझौते का इतना महत्व था कि उन्होंने लखनऊ Luck now के अंग्रेजी अक्षर-क्रम पर श्लेष करते हुए कह दिया कि यह समझौता तोLuck now है, लखनऊ में 1916 की आखिर में कांग्रेस और मुस्लिम लीग इन दोनों दलों के अधिवेशन आयोजित किये गये और लखनऊ समझौते पर मुहर लगा दी गई। मदनमोहन मालवीय डा मुंजे आदि कतिपय हिन्दू नेताओं ने इस समझौते का विरोध किया।" पिण्डे मर्तिर्भिन्ना' यह प्रकृति का विविधता सम्बन्धित नियम है। शेषाद्रिजी ने पंडित मालवीय को एक कांग्रेसी नेता के रुप में देखा तो श्री जोग की दृष्टि को मदनमोहन मालवीय और डा. मुंजे हिन्दू नेता के रुप में दिखाई दिए। पर उन दिनों के नवनिर्मित तथा अद्वितीय हिन्दू संगठन अखिल भारत हिन्दू महासभा के नेता के रूप में इन दो महानुभावों का परिचय इन दो विद्वान लेखकों ने अपने-अपने ग्रन्थों में देना आवश्यक नहीं समझा।

लखनऊ समझौता प्रकरण में श्री जोग लो तिलक के कटु आलोचक है। अपने ग्रन्थ में आगे वह लिखते है कि-"लखनऊ समझौता आगे आगे अनिष्टों की शुरुआत थी। अब मुसलमानों की मांगे बढ़ती ही चली गई। ... हिन्दुओं को जबरदस्त हानि पहुंचाने वाला जनतन्त्र के सर्वमान्य सिद्धांतों को पैरों तले रौंदने वाला और देश विभाजन की नींव को जबरदस्त मजबत करने वाला लखनऊ समझौता इन दो मान्यवर नेताओं (लो. तिलक बेरिस्टर जिन्ना) ने सम्पन्न किया।" श्री जोग के विषय में लोकमान्य के प्रति आक्रामक होने के समर्थन में इतना कहना पर्याप्त होगा कि साढ़ छह सौ पृष्ठों के अपने ग्रन्थ में लेखक ने एक-दो बार नहीं तो नौ दस बार इस विषय को प्रस्तुत कर लोकमान्य तिलक को आरोपित किया है।

हम इतिहास की प्रामाणिकता के आग्रही है इसीलिए श्री जोग को यह श्रेय देना चाहेंगे कि उन्होंने अपने ग्रन्थ में इन प्रसंगों का अवश्य उल्लेख किया है जब लो.लखनऊ से बनारस गये तो वहां हिन्दूसभा यहां नेताओं ने तिलकजी के सामने अपना स्पष्ट विरोध प्रकट किया और लखनऊ में उन्ही दिनों आयोजित अ भा हिन्दू महासभा के द्वितीय अधिवेशन में अध्यक्ष सर सी. पी. माधवराव में अपने अध्यक्षीय भाषण में लखनऊ समझौते पर नापसंदगी व्यक्त करते हुए कहा कि "मुस्लिम लीग के दबावों में आकर वांशिक और विवादों को तीव्रता प्रदान की जा रही है भारत के भावी हितों की दृष्टि से यह बात (लखनऊ समझौता) खतरनाक है।

ज्ञातव्य है कि, इतिहास में लखनऊ-समझौते के रुप में अंकित वह प्रस्ताव कांग्रेस के लखनऊ अधिवेसन में 29 दिसम्बर को श्री सुरेन्द्रनाथ बेनर्जी द्वारा प्रस्तुत किया गया था और उसके समर्थक के रुप में लो. तिलक और बिहार के मजहर उल हक के प्रमुख भाषण हुए थे। हिन्दू महासभा के नेता तथा स्वयं को लो. तिलक के अनुयायी समझने वाले डा. बालकृष्ण शिवराम मुंजे ने लखनऊ समझौता तिलकजी की एक बड़ी भूल है यहां यह भी उल्लेखनीय है कि31 दिसम्बर तक तिलकजी लखनऊ में ही थे। हिन्दू महासभा के नियंत्रण पर उस दिन हिन्दू महासभा अधिवेसन में उपस्थित थे और अधिवेसन को तिलक जी ने उद्‌बोधित भी किया था। और अध्यक्षजी ने उपयुर्क्त वर्णनानुसार तिलकजी की उपस्थिति में लखनऊ समझौते को स्पष्ट शब्दों में घातक बताते हुए उसका विरोध भी किया था।

हिन्दुत्ववाद से सम्बन्ध राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ परिवार के विचारक अपने कार्यकर्ताओं और हिन्दुओं के सामने लखनऊ समझौते की भयानक सत्यता को इतिहासके इक प्रमाणभूत सत्य के रुप में प्रस्तुत करते है तो किसी भी प्रकार कुछ गलत नहीं करते। यह उनका जनतन्त्रीय अधिकार है। और हमने देखा कि उपर्युक्त वर्णनानुसार संघ के दो विचारक-विद्वानों ने अपने ग्रन्थों में लो. तिलक और लखनऊ-समझौते के सम्बन्ध और सन्दर्भ में जो भी लिखा उसका सड़क पर आकर विरोध किसी ने नहीं किया। पर वही बात चुनावी प्रचार के लिए एक पुस्तिका के रुप में प्रकाशित हुई तो उसका विरोध उग्रता तीव्रता को प्राप्त करता दिखायी दिया। इसीलिए, प्रश्न उठता है कि सामान्य स्थिती में जनप्रबोधन के मन्तव्य से ग्रन्थ-लेख आदि रुप में जो प्रकाशित होता है उसे निर्वाचन जैसे असामान्य वातावरण में पुस्तिका या भाषण आदि रूप में प्रस्तुत करना क्या उचित है? सुरक्षित है? श्रेयस्कर है? इस विषय में हमारा अभिमत तो यह है। 'सत्यं ब्रूयात, प्रियं ब्रूयात सत्यम अप्रियम' इस उक्ति को सामान्यवन के सन्दर्भ अवश्य ध्यान में रखा जाना चाहिए। जबकत हमारा समाज एक प्रखर सत्य को ग्रहण करने की क्षमता नहीं रखता तब तक खुली सड़क पर उसे उस सत्यज्ञान का उपदेश देना व्यर्थ है। इस प्रकार सत्य को ग्रहण करने-पचाने की क्षमता उस समाज में उत्पन्न करना यही उपदेशकों का प्रथम सामाजिक दायित्व है। इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि इतिहास की सत्यताओं का उद्घाटन कहीं और कभी किया ही न जाए! किया जाय! अवश्य किया जाय! पर वहाँ उस परिस्थिति में तथा उनके सम्मुख किया जाय जो उसे ग्रहण करने पचाने की क्षमता रखते हो।

हमारा यह आग्रह भी नहीं कि हमारी इस धारणा से सभी महमत हो! एक साहसी क्रान्तिकारी दृष्टिकोण हमारे उपरिवर्णित तर्क के ठीक विरुद्ध हो सकता है — सत्य कही भी किसी भी अवस्था में और किसी के लिए भी कहा जाना चाहिए क्योंकि, वह सत्य है! और अनुकूलताओं की प्रतीक्षा करना धीरज रखना नहीं; तो भीरुता है। इस तर्क को भी कुतर्क की श्रेणी में रखा नहीं जा सकता। क्योंकि, उसकी धरा में जो उद्देश्य हैं वह पवित्र है—वह सदउद्देश्य है। पर इस साहसी क्रान्तिकारी पथ पर अग्रसर होनेवाले से यह अपेक्षा तो होगी ही कि वह मार्ग के मध्य से कहीं पलायन नहीं करेगा। पर यहाँ तो भाजपा की महाराष्ट्र प्रदेश ईकाई ने अपेक्षाभंग किया हैं।

भाजपा की पुस्तिका में लखनऊ समझौता के सन्दर्भ में लोकमान्य तिलक के विषय में जो भी कहा गया था उसका विरोध बढ़ते देख भाजपा की मुबंई इकाई के उपाध्यक्ष श्री मधु देवलेकर ने शुक्रवार १० मई को उक्त पुस्तिका को वापस लेने की घोषणा की। महाराष्ट्र भाजपा के एक महामंत्री श्री धरमचन्द चोरडिया ने इस विषय में राजनीति चलाने की कोशिश अवश्य की थी।

उन्होने यह स्पष्टीकरण दिया कि, पुस्तिका में दोषारोपण लो तिलक पर नहीं तो कांग्रेस पर किया गया है, 'मुसलमान इस देश के साथ एकनिष्ठ रह नहीं सकते और अन्य धर्मावलबियो से सौहार्दपूर्ण व्यवहार नहीं रखते' इस लिखित कथन में 'कतिपय मुसलमान' जैसे शब्दों की आवश्यकता होने के सुधार बताने जैसी चतुराई भी करती और तो और इस प्रकार का हास्यास्पद तर्क तक भी प्रस्तुत करने से नेता चोरडियाजी ने संकोच का अनुभव नहीं किया कि, सम्बन्धित पुस्तिका भाजपा की संस्थागत नीति को प्रस्तुत नहीं करती तो उसमें मात्र प्रचार के उद्देश्य से कुछ मुद्दे भर सुलझाये गये हैं। पर इन थोथी दलीलों का जब जनता पर कोई असर न पड़ा तो चुनावी लाभो को दृष्टिगत रख तुरन्त-फुरंत पुस्तिका वापस ली गयी।

(शेष अगले अंक में)

बड़े लोगों के बड़े प्रमाद

भारत विभाजन के जनक लोकमान्य तिलक ?

लखनऊ समझौता : अलगाववाद पर मुंहर ।

दु:साहसी खुशवन्तसिंह–

(गतांक से आगे)

खुशवन्तसिंह को इतिहास में बडी रुचि है । पंजाबी भाषा के इतिहास से लेकर शेक्सपियर के नाटकों तक इतिहासकार उनका सबसे प्रिय विषय है । उनकी साहित्य रचना में सिखों का इतिहास भी है, पर इतने भर से वह यदि स्वयं के इतिहास होने का भ्रम पालते हो तो दुर्भाग्यपूर्ण ही कहा जाएगा ।

ज्ञान-विज्ञान के विस्तार के वर्तमान युग में वर्गीकरण और विशिष्टीकरण बढ़ता ही जा रहा है । इतिहास के क्षेत्र में भी काल क्षेत्र और विषयों की दृष्टि से वर्गीकरण है । ऐसे में खुशवन्तसिंह यदि गुरु गोविन्दसिंह के सम्बन्ध में किसी ऐतिहासिक प्रसंग का सप्रमाण विश्लेषण प्रस्तुत करें तो उन्हें यह अधिकार अवश्य है । तथापि राजपूत इतिहास या मराठा इतिहास पर बिना अवगाहन किये लिखना सर्वथा अनाधिकार चेष्टा ही होगी । खुशवन्त सिंह ने लगता है सहज ही में इन विषयों पर वह कुछ कह दिया जिसके कहने का उन्हें कोई अधिकार नहीं था । लगता है परिणामों की उन्होंने कोई कल्पना ही नहीं की थी । कभी-कभी व्यक्ति जब सफलता की सीढ़ियों पर चढ़ने लगता है तो वह सोचने लगता है कि वह अपराजेय है उसका रास्ता रोकने की क्षमता और साहस किसी में नहीं है । और मानों अहंकार की इसी राह में वह अपनी सुध-बुध खो देता है । खुशवन्तसिंह निश्चय ही बहुत समझदार है, इसीलिए तो अविलम्ब ही क्षमा याचना कर एक आग को दावानल बनने से उन्होंने रोक लिया ।

'अफजल खान और शिवाजी भेंट प्रसंग' का विषय एक इतिहास विषय है और ऐसे विषय पर विद्वत-परिचर्चा हो और वह उन्ही तक सीमित रहे तो उसपर आपत्ति करने का कोई कारण नहीं । पर ऐसे विषय सामान्य जनमानस तक इसलिए नहीं पहुंचने चाहिए कि उनकी श्रद्धापूर्ण धारणा को ठेस पहुंचने की और उसकी प्रतिक्रिया उत्पन्न होने की सम्भावना होती है । जैसी की इस प्रकरण में हुई भी ! खुशवन्तसिंह को यह बात तो ध्यान में रखनी चाहिए थी कि बारात को खिचड़ी नहीं खिलाई जाती और बीमारों को हलुए-माडे परोसे नहीं जाते । पर स्पष्ट है कि वह विवेक खो बैठे । अब खुशवन्तसिंह गुरुवार 10 नवम्बर 1659 के उस प्रसंग को आज प्रत्यक्ष में देखने से तो रहे । ऐसे में उचित होता कि उस पर अपना कोई निश्चित मत बनाने से पहले वह श्री जी एस सरकार की 'न्यू हिस्ट्री आफ मराठाजू' को पढ़ लेते । इतिहासकार श्री विशनदास की 'इण्डीयन हिस्ट्री' को देख लेते या इश्वरी प्रसाद के निष्कर्षो को एक बार पढ़-सोच लेते । तीन सौ वर्ष पूर्व की इस्लामी हूकूमत में क्यां कुछ जुल्म ढाये गये उससे परिचित होने के लिए विख्यात इतिहासकार श्री शेजवलकर द्वारा वीर शिवाजी पर लिखे ग्रन्थ में प्रस्तुत प्रमाणों को यदि खुशवन्तसिंह पढ़ने की चेष्टा करते तो क्षमायाचना का ग्रहचक्कर उत्पन्न हो नहीं होता । वीरशिवाजी के समकालीन कवि परमानन्द की पंक्तियों से भी बहुत कुछ जानकारी प्राप्त हो सकती थी ।

कविवर लिखते हैं कि 'शिवाजी के आने पर अफजलखां ने कहा – "मैं खुद तुम्हें अपने साथ बीजापुर ले जाऊंगा । तुम्हें आदिलशाह के सामने नतमस्तक कराऊंगा और उनसे बडी ही नम्रता से निवेदन करते हुए मैं तुम्हें उनके द्वारा भेंट दिलवाऊंगा । ऐ ! शाहजी के पुत्र ! आओ ! मुझसे हाथ मिलाओं और मुझे हृदय से लगाओं ।"–यह कहते हुए अफजलखां शिवाजी को पकड़ने के लिए आगे बढ़ा ।"

और इस प्रकार अफजलखाँ ने तेजी से शिवाजी की गर्दन दाहिने हाथ से पकड़ी और बाये से शिवाजी के पेट में कटार भोंकने की कोशिश की । पर शिवाजी ने जिरहबख्तर चढाया हुआ था सहसा खान का वार बेकार गया । और फिर शिवाजी ने बड़ी फुर्ति से बिछुआ खान के पेट में घोंप दिया और दूसरे हाथ से बाघनखों की सहायता से खान की आंतों को चीर दिया और अफजलखाँ धराशायी हो गया । अफजलखान ने शिवाजी को जीवित पकड़ने या मारकर उसका सर बीजापुर दरबार में प्रस्तुत करने का बीड़ा उठाया था । बीजापुर से चलते हुए रास्ते में तुलजा भवानी और पंढरपुर के विठोबा के विख्यात मन्दिरों सहित अनेक देवताओं में भयंकर बुतशिकनी की थी । हिन्दुओं पर बड़े अत्याचार किये थे । उनका बलात धर्मपरिवर्तन किया था । और अफजलखान शिवाजी का पारिवारिक शत्रु भी तो था । उसने शिवाजी के बड़े भाई सम्भाजी की हत्या की थी । इस पृष्ठ भूमि पर तथा गुप्तचरों से प्राप्त जानकारी के आधार पर शिवाजी यह भली-भांति जानते थे कि अफजलखान किसी सौजन्य-भेंट के लिए नहीं तो धोखे से हत्या करने की मंशा से भेंट का नाटक रचे हुए हैं । ऐसे में शिवाजी सभी प्रकार से तैयार होकर पूरी योजनाबद्धता के साथ अफजलखान से भेंट हेतु प्रतापगढ़ किले की तलहटी में पहुंचे थे । और उनकी सूझबूझ ने इतिहास को एक भयंकर मोड़ लेने से बचा लिया ।

विद्वान पत्रकार खुशवन्तसिंह को यह बताने की आवश्यकता नहीं कि शिवाजी न तो कोई भोला भाला मानव था और न ही कोई सन्त–महन्त वह तो शत्रुओं के छक्के छुडाने वाला एक कुशल कूटनीतिनिपुण राजनेता था, साहस और शौर्य का धनी था । ऐसे राष्ट्रपुरुष के लिए तथा महाराणा प्रताप, पृथ्वीराज चौहान और गुरुगोविन्दसिंह के लिए इस देश में जो श्रद्धा और सम्मान की भावना है वह खुशवन्तसिंह के अनुसार ही ठीक इसलिए है कि इन महापुरुषों ने मुसलमानों से अर्थात हमारे देश-धर्म को दासता में जकड़ने आये मुसलमानों से लोहा लिया था । और यह ठीक वैसा ही है जैसा कि नेताजी सुभाषे, वीर सावरकर, भगतसिंह आदि क्रांतिकारियों ने तथा महात्मा गांधी, सरदार पटेल, पंडित नेहरू आदि शांतिवादियों ने भारत की स्वाधीनताहित अग्रेजों से संघर्ष किया था ।

सचमुच बड़ी ही सूझबूझ और साहसिकता का परिचय देते हुए खुशवन्तसिंह ने एक भयंकर रुप धारण कर सकने वाले तूफान को शांत कर दिया । पर इस तूफान के समाप्त होने के साथ ही एक दूसरे तूफान के लक्षण महाराष्ट्र के चुनावी वायुमण्डल में दिखायी देने लगे । और इस दूसरे तूफान की जननी थी, भारतीय जनता पार्टी । भाजपा के नेताओं ने, 1991 के लोकसभा चुनाव को ठीक दिल्ली काबीज करने की शैली में लड़ा और इस दृष्टि सेसत्य-असत्य, पसंद-नपासंद, उचित-अनुचित के चिंतन को बढाए तांक रखकर ,येनकेन प्रकारेण, की
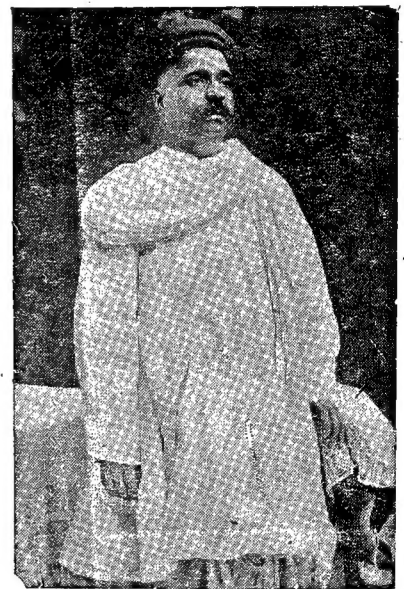
प्रखर नीति का आचरण किया । इसी चुनावी–आचरण में भारतीय जनता पार्टी की महाराष्ट्र प्रदेश इकाई द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में पार्टी–प्रचार हेतु जहां तमाशा (नौटंकी) शैली की वीडिओ कैसेटों को भारी सख्या में परदों पर उतारा गया वहां शहरी क्षेत्र के शिक्षित नागरिकों को प्रभावित करने हेतु कदाचित पहली बार कुछ विद्वत् साहित्य देने की चेष्टा की गयी । अन्यथा दस वर्ष बीत चुके भाजपा अपने गांधीवादी-समाजवाद की न तो व्याख्या कर पायी है, न ही इसका परित्याग ही कर सकी है । इस बार चुनाव के अवसर पर भजपा ने जन–प्रबोधन की जो पहल की वह उसके लिए अरम्भ में ही बड़ी परेशानी का कारण बन गयी । यह एक मनोरंजक यथार्थ है कि अपनी संविधान रुपी पोथी में सिद्धान्तर रूप में भाजपा जिस 'हिन्दुत्व' एक मे वाद्वितीय रक्षक के रूप में आत्म-परिचय देने में वास्तव में उसने बड़े साहस और कुशलता का परिचय दिया । इसी कुशलता का एक नमूना था उसके द्वारा प्रकाशित एक चुनाव-प्रचार पुस्तिका । मराठी में "अल्पसंख्यक समाजये मे अंगुलचालन म्हणजे काय ? कसे ? कशासाठी ?"

(शेष पेज 3 पर)

★ आगामी अंक में ★

- ✗ बडे लोगो के बडे प्रमाद
- गांधीजी नाथूराँम गोडसे प्रकरण
- ✗ हे राम तुमही जानत पीर हमारी ।

पा हिंदु अस्मिता-सम्पादक, स्वामी विक्रम गणश ओक (विक्रमसिंह) प्राध्यापक द्वारा विश्वास कर्मशियप एजेन्सी 55/2; माली मोहल्ला, इन्दौर से मुद्रित एवं 'अभिनव भारत प्रकाशन' 16 एम. आय. जी. (शॉप कम रेसीडेन्स) नन्दानगर मेनरोड़, इन्दौर मध्यप्रदेश, 452008 से प्रकाशित । दूरभाष 37945 ।